जीव अधिकार चलता है। कैसा जीव का स्वभाव दृष्टि में आने पर समकित होता है? मोक्षमार्ग का अधिकार है। मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे जीव की प्रतीति करने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात चलती है। ३५ वाँ कलश है। ३५ वाँ कलश है न ऊपर? पृष्ठ ४५ है।

भविनि भवगुणाः स्युः सिद्धजीवेऽपि नित्यं,
निजपरमगुणाः स्युः सिद्धिसिद्धाः समस्ताः।
व्यवहरणनयोऽयं निश्चयान्नैव सिद्धि-
र्न च भवति भवो वा निर्णयोऽयं बुधानाम्।।३५।।

जरा सूक्ष्म विषय है। क्या कहते हैं? यह जीव का अधिकार है न? तो यह जीव जो आत्मा है, वह संसारदशा में अनादि से उसमें संसारीगुण होते हैं। क्या कहते हैं? गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। आत्मा की पर्याय में, संसारदशा में संसारी-विकारी पर्याय होती है। वह एक समय की पर्याय है। है?

श्लोकार्थ :—संसारी में सांसारिकगुण... यहाँ गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्यमूर्ति आत्मा, उसकी वर्तमान पर्याय संसारदशा में, सांसारिक गुण अर्थात् संसारी मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष आदि विकारी अवस्था होती है। एक बात।

और सिद्ध जीव में सदा समस्त सिद्धिसिद्ध... और सिद्धभगवान में-सिद्ध जीव में, वह जीव है न यह? **सदा समस्त सिद्धिसिद्ध (मोक्ष से सिद्ध, अर्थात् परिपूर्ण हुए)...** मोक्ष के योग्य जो परिपूर्णदशा—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अवस्था; यहाँ गुण कहा, परन्तु अवस्था, ऐसे परिपूर्ण **निज परमगुण होते हैं...** सिद्ध में परम निज

परम गुण का अर्थ, निज परम निर्मलदशा होती है। समझ में आया? जीव वस्तु-आत्मा। जीव कहो या आत्मा कहो, (दोनों एक है।) उसकी पर्याय में—अवस्था में संसारीदशा में विकारी अवस्था होती है और मोक्षदशा में निर्विकारी परिपूर्ण शुद्ध अवस्था होती है। समझ में आया?

कहते हैं, **इस प्रकार व्यवहारनय है।** आहा..हा..! एक समय, सैकेण्ड के असंख्य भाग में, आत्मा में, एक समय की विकारी संसारदशा, और जब मोक्ष होता है, तब एक समय की निर्विकारी (अवस्था होती है)। निर्विकारी अवस्था में विकारी अवस्था नहीं; विकारी अवस्था में निर्विकारी अवस्था नहीं। परन्तु वह निर्विकारी-निर्दोष, परमात्म सिद्धदशा और संसारदशा दोनों व्यवहारनय का विषय है। आहा..हा..! जो वर्तमान अवस्था का लक्ष्य करे, ऐसे व्यवहारनय का वह विषय है। सूक्ष्म है। वह निश्चय वस्तु नहीं। समझ में आया?

जीव के दो भाग। जीव-आत्मा वस्तु द्रव्य है न? उसमें एक संसार अवस्था (होवे, तब) मोक्ष अवस्था नहीं होती। जब परिपूर्ण निज गुण की मोक्षदशा (होवे), तब संसारदशा नहीं होती, परन्तु कहते हैं कि जीव की वह अवस्था वर्तमान नय का विषय-व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है, आदर करनेयोग्य नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! संसारदशा होवे, तब तो वह विकार है। आत्मा में वह एकसमय की दशा है; और सिद्धदशा होती है, वह भी एक समय की सिद्धदशा है। सिद्धदशा दो समय नहीं रहती। एक समय में जो दशा हुई, वह दूसरे समय में दूसरी होकर एक-एक समय ही रहती है। कहते हैं कि दोनों अवस्था, वर्तमान भेद पाड़कर देखना, ऐसा जो व्यवहारनय, उसका विषय है। आहा..हा..! पण्डितजी!

निज परमगुण... लिखा है, देखो! सिद्ध में निज परमपर्याय। भगवान आत्मा मुक्तदशा हो, तब निज स्वभाव शुद्ध है, उसकी पर्याय में शुद्धता, परिपूर्ण-परिपूर्ण शुद्धता (होती है), वह सिद्ध। वह भी एक समय की अवस्था है, पर्याय है, व्यवहार है, हेय है, आदरणीय नहीं। आहा..हा..! सूक्ष्म विषय है, भाई! समझ में आया?

निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं है और संसार भी नहीं है,... आहा..हा..! भगवान आत्मा... यहाँ निश्चय में नय नहीं डाला। व्यवहार में नय शब्द पड़ा है, परन्तु (निश्चय)

नय लेना। निश्चयनय से तो भगवान आत्मा ध्रुव, नित्यानन्द 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा स्वयं निजस्वरूप, अपना परमात्मस्वरूप शुद्ध, ध्रुव, वह निश्चय, जीव का वास्तविक वह स्वरूप है, उसे ही यथार्थ में जीव कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई!

आत्मा में अनादि से कर्म, शरीर आदि तो है नहीं। एक समय की विकारी दशा है और विकार नाश होने से सिद्धदशा उत्पन्न हो तो एक समय की पूर्ण शुद्धदशा एक समय की है। वह दो समय नहीं रहती क्योंकि सिद्धदशा है, वह पर्याय है, दशा है, हालत है, अवस्था है। वह अवस्था एक समय में रहनेवाली, व्यवहारनय है। पर्याय, वही व्यवहार है। आहा..हा..! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति और परिणाम, वह व्यवहार और उससे निश्चय हो, ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया? पण्डितजी!

भगवान आत्मा, सच्चिदानन्दस्वरूप, सिद्धस्वरूप, त्रिकाल उसका सिद्धस्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। ध्रुव, नित्य परिणाम की क्रिया से भी रहित, सिद्ध की पर्याय से रहित, संसार की पर्याय से रहित। समझ में आया? ऐसा भगवान यह आत्मा, निश्चय से देखो तो अन्तर्मुखदृष्टि से-ज्ञाननिश्चय से उसे देखो तो सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी ध्रुव जो चीज़ है, उसमें तो सिद्धि भी नहीं। उसमें मोक्षदशा नहीं। मोक्षदशा तो एक समय की पर्याय है। आहा..हा..!

मोक्षदशा उत्पन्न होकर रहती सादि-अनन्त है न? जब से उत्पन्न हो, तब से अनन्त काल रहती है। नहीं, नहीं। एक समय की अवस्था दूसरी हो जाती है। वह की वह अवस्था नहीं रहती। सिद्ध में भी केवलज्ञान की पर्याय एक समय की होती है। दूसरे समय में वह पर्याय नहीं; वैसी हो परन्तु वह नहीं होती। आहा..हा..! कहते हैं कि सिद्ध-मुक्तदशा भी व्यवहारनय का विषय है। जीव एकरूप में दो भेद पड़ गये, वह व्यवहार है। आहा..हा..! वह व्यवहार भी अभूतार्थ है।

त्रिकाल भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति ध्रुव, एकरूप जो निश्चयस्वभाव, परमस्वभावभाव ध्रुव नित्य अनाकुल आनन्द का रसकन्द एकरूप सदृशस्वभाव, निश्चय से वह चीज़ आत्मा की है, वह आत्मा है। समझ में आया? उस आत्मा में सिद्धगति की पर्याय, संसार की पर्याय की नास्ति है। सूक्ष्म विषय है, भाई! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है।

भगवान आत्मा... तारणस्वामी तो बारम्बार कहते हैं कि 'अप्पा सो परमप्पा' उसमें आता है। वह क्या ? आत्मा एक समय में परिपूर्ण चैतन्यध्रुव, वह अप्पा सो परमात्मा। सिद्ध की पर्याय और संसारी पर्याय, वह परमात्मा नहीं। आहा..हा.. ! गजब बात है। समझ में आया ? कहते हैं कि निश्चयनय से देखो तो, देखो ! यहाँ नय लिया। पहला ज्ञान। भाई अकेली दृष्टि दृष्टि करते हैं न ! दृष्टि, परन्तु साथ में ज्ञान है। ज्ञान साथ में है। उस वस्तु का लक्ष्य करना, वह तो नय से लक्ष्य होता है। समझ में आया ? समझाये छे, यह हमारी गुजराती भाषा है।

अन्तर में भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण ध्रुव निष्क्रिय, सिद्ध और केवलज्ञान की पर्याय से भी रहित तथा संसार के मिथ्यात्व, राग-द्वेष, अज्ञान, इस पर्याय से भी रहित है। जिसे एकरूप स्वभाव कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, सामान्य कहो, एक ज्ञायकभाव चैतन्यध्रुव जो शुद्ध निश्चयनय का विषय है, वह निश्चय आत्मा है। अन्य व्यवहार आत्मा। आहा..हा.. ! जीव अधिकार है न ? सिद्ध की पर्याय और सिद्ध का आत्मा, वह व्यवहार आत्मा कहते हैं। आहा..हा.. ! ऐई ! एक समय की अवस्था है, दो समय नहीं है। भगवान तो त्रिकाल ध्रुव.. ध्रुव.. कन्द चिदानन्द अभेद, एकरूप स्वभाव से आत्मा पूर्ण पड़ा है, उस निश्चयनय के विषय में सिद्ध की पर्याय और संसार की पर्याय तथा मोक्षमार्ग की पर्याय उसमें है ही नहीं। समझ में आया ?

अपना चैतन्य भगवान पूर्ण सत्ता-अस्तित्व, शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से सिद्ध आदि पर्याय की उसमें नास्ति है। पर्याय, पर्याय में है। सिद्धपर्याय, केवलज्ञान, वह तो पर्याय है। केवलज्ञान गुण नहीं है। यहाँ शब्द ऐसा लिया है कि निजपरमगुण। गुण का अर्थ पर्याय। मिथ्यात्व और राग-द्वेष जो अवगुण हैं, वह पर्याय है। उस अवगुण का व्यय होकर जो निजगुण की निर्मल पर्याय हुई, उसे गुण कहा जाता है। परन्तु वह उत्पाद और व्यय दोनों व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया ? आहा..हा.. !

अभी तो उसका झगड़ा... यह व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव से धर्म होता है। अरे भगवान ! तू कहाँ है, बापू ? तुझे खबर नहीं है। समझ में आया ? दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, भगवान की पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो... भाई ! यह तो एक विकल्प-राग है। यह राग है, वह धर्म नहीं है। राग से पृथक् होकर ज्ञायकभाव शुद्धचैतन्य भगवान है, उसकी दृष्टि करने से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति हो,

उसका नाम धर्म है। उसका नाम धर्म है। वह धर्म मुक्ति का उपाय है। समझ में आया? नवरंगभाई! यह छठे श्लोक का लालूभाई कहते थे। वही बराबर यहाँ आया। कल बहुत अच्छा था, हों! छहों श्लोक अच्छे थे। कल बहुत चला था।

मुमुक्षु : फिर से लो तो कुछ आपत्ति नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वापस कुछ पार नहीं आता। कहो, समझ में आया?

परिपूर्ण आत्मा की केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, पूर्ण स्वच्छता, ऐसी दशा प्रगट हो वह उत्पाद है, नयी अवस्था है। सिद्ध भी पुरानी शक्ति नहीं। सिद्ध भी नयी अवस्था है और संसारी भी नयी अवस्था विकारी है, पुरानी वस्तु नहीं है। रतिभाई! पुराना तत्त्व तो उस एक समय की पर्याय के अतिरिक्त का। सिवाय कहते हैं न? अलावा। हमें हिन्दी नहीं आती, हों! हम तो काठियावाड़ी गुजराती हैं न, थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है। एक समय की सिद्ध की दशा-अवस्था है, उससे रहित भगवान आत्मा पूर्णानन्द ध्रुव चैतन्य भगवान, वही निश्चयनय का विषय कहो, अथवा वही निश्चय है अथवा वही तत्त्व है, बस। वही सत्व है और वही परमात्मा है। आहा..हा..! बासन्तीलालजी! लोग कहीं का कहीं भटका-भटक करते हैं, यहाँ से धर्म होगा और यहाँ से होगा। आहा..हा..! ऐई! प्रकाशदासजी! मानो सम्मेदशिखर जायेंगे, वहाँ से मुक्ति होगी। शत्रुंजय जायेंगे, वहाँ से मुक्ति होगी, (ऐसा मानते हैं)। यह तो मुक्ति होगी तेरे द्रव्य से। वह पर्याय भी तेरे द्रव्य में नहीं है। पर के कारण मुक्ति-बुक्ति नहीं होती। समझ में आया? भगवान की ऐसी बात है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा, सर्वज्ञ ज्ञान से सब देखा, वाणी द्वारा वैसा कथन आया, उसे आगम कहा गया। उस परमागम में ऐसा फरमान है। भगवान! तू आत्मा है? हाँ, तो आत्मा में दो प्रकार : एक पर्याय और एक ध्रुव। सिद्ध की और संसारी की ये दोनों पर्याय व्यवहार है। त्रिकाल स्वरूप में नहीं है, इस अपेक्षा से तो असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। अरे रे! पर्याय की अपेक्षा से पर्याय है। वस्तु की अपेक्षा से वह है ही नहीं। असत् है। जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य असत् है, अद्रव्य है; वैसे भगवान निश्चय की अपेक्षा से पर्याय असत् है। असत् है, उसका अर्थ नहीं है - ऐसा नहीं। उससे (पर्याय से) तो सत् है। स्वभाव की अपेक्षा से असत् है। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायकभाव की

अपेक्षा से सिद्धपर्याय असत् है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जीवद्रव्य का अधिकार है न? जीव अधिकार। वास्तविक जीव, यथार्थ जीव, भूतार्थ, सत्यार्थ, सच्चा प्रयोजनभूत जीव, वह तो निश्चय ध्रुव है, जिसमें बन्ध की क्रिया भी नहीं और मोक्ष की क्रिया भी नहीं और मोक्ष के मार्ग की क्रिया भी उसमें नहीं। आहा..हा..!

इस प्रकार व्यवहारनय है। आहा..हा..! गजब बात है। सिद्ध, केवलज्ञान व्यवहारनय है। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं; गुण तो त्रिकाल है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञायक... ज्ञायक... सदृशध्रुव... सदृशध्रुव... अभेदध्रुव, परमार्थ से आत्मा उसे कहा जाता है और उस आत्मा की दृष्टि करना, उसे सम्यग्दर्शन में ऐसा आत्मा प्रतीति में आता है। ऐसा आत्मा प्रतीति में आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अभी सम्यग्ज्ञान और चारित्र तो बाद में है। समझ में आया? साथ में आंशिक ज्ञान, आंशिक चारित्र है, परन्तु ऐसी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर गये बिना, वास्तविक सत् की श्रद्धा उसे नहीं होती। समझ में आया? वास्तविक सत् भगवान आत्मा, चिदानन्द ज्ञायकध्रुव, अनादि-अनन्त, एकरूप सदृश वह वास्तविक आत्मा, यथार्थरूप से आत्मा, सत्यरूप से, निश्चय से आत्मा है, उसकी दृष्टि करे तो वह आत्मा ऐसा है, ऐसी प्रतीति होवे तो उस दर्शन को सम्यग्दर्शन कहते हैं। क्योंकि उसके विषय में पूरा आत्मा दृष्टि में आ गया है। आहा..हा..! गजब बात है, भाई! धर्म कैसा है, यह समझना कठिन पड़ता है।

वह **निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं...** जिसे यथार्थ भगवान, भूतार्थ (स्वभावदृष्टि में) आया.. यह तो छठवीं गाथा में कहा और ग्यारहवीं गाथा में कहा, वही बात है। आहा..हा..! ज्ञायक ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा। वहाँ ऐसा कहा कि प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था की नास्ति। यहाँ सिद्ध की पर्याय और संसार की नास्ति, इतना विस्तरित किया, भाई!

मुमुक्षु : यहाँ सब पर्यायें लीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सब पर्यायें ले लीं। वहाँ जरा शुरुआत है, इसलिए इसकी संसार अवस्था की पहले से चौदहवें तक की अवस्था। एक ज्ञायकभाव, '**ण वि होदि अपमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो**' यह ज्ञायकभाव जो ज्ञायकभाव है, उसमें तो प्रमत्त-अप्रमत्त की पर्याय का अभाव है, नास्ति है। उसमें, हों! पर्यायरूप से पर्याय हो; वस्तु में उसका अभाव है। ऐसा ग्यारहवीं गाथा में कहा है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' अथवा

'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' भूतार्थ त्रिकाल एक समय की पर्याय के अतिरिक्त का पूरा आत्मा, वही सत्य है और वही शुद्धनय है और वही निश्चयवस्तु है। उसका आश्रय करने से, उसका लक्ष्य करने से, उसमें दृष्टि देने से, जो निर्मल अनुभव हो, उसकी प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करो, समकित है। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो (वह समकित है), ऐसा है नहीं। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, वह सम्यग्दर्शन है, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं, वास्तव में निश्चय से भगवान आत्मा को अन्तर में खोजे तो ऐसा नित्यानन्द भगवान नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... उसमें मुक्ति भी नहीं। **संसार भी नहीं है, यह बुध पुरुषों का निर्णय है।** आहा..हा..! **'निर्णयोऽयं बुधानाम्।'** ज्ञानियों का यह निर्णय है। समझ में आया? ज्ञानियों का यह निर्णय है। अनन्त ज्ञानी, तीर्थंकर, सर्वज्ञ मुनियों (का यह निर्णय है)। सच्चे की बात है, हों! वस्त्र बदलकर नग्न होकर बैठे, वे कोई साधु हैं, ऐसा नहीं है। अभी आत्मा क्या चीज़ है? और उसमें क्या राग आदि नहीं? और उसमें सिद्ध की पर्याय तथा संसार की पर्याय नहीं है। ऐसे आत्मा के अनुभव बिना सम्यग्दर्शन नहीं और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र होता नहीं। अंकरहित शून्य है। क्या कहते हैं? शून्य।

निश्चय से तो सिद्धि भी नहीं है और संसार भी नहीं... लो, यह ज्ञानी पुरुषों का निर्णय। इस निर्णय में आनन्द साथ में आता है, यह निर्णय। ऐसा विकल्प से निर्णय करना... समझ में आया? उसमें आनन्द आया नहीं तो पूरा द्रव्य दृष्टि में नहीं आया। समझ में आया? विकल्प से, मन से निर्णय करे तो उस निर्णय में तो दुःख दशा खड़ी है। उसमें अनन्त-अनन्त गुण की राशि प्रभु चैतन्य, ऐसा द्रव्य / वस्तु का निर्णय हो तो उसमें जितने गुण हैं, वे सब पर्याय में, वेदन में, अनुभव में आये बिना नहीं रहते। उसे यहाँ बुध पुरुषों का निर्णय कहते हैं। आहा..हा..! ऐसे निर्णय-निर्णय करते हैं न? निर्णय में ऐसे बड़ा अन्तर है। सेठी! आहा..हा..!

अरे! तेरा मार्ग तो देख, भगवान! तेरा स्वरूप तो एक समय के केवलज्ञान में भी आता नहीं। सिद्ध की एक समय की केवलज्ञान की पर्याय है, उसमें द्रव्य नहीं आता। वस्तु (पर्याय में) आ जाये तो दूसरे समय में नाश हो जाये। समझ में आया? आहा..हा..! वह

तो जो है, वह है। उसमें कुछ हलन-चलन, फेरफार, हीनाधिकता कुछ नहीं है। आहा..हा..! जेठाभाई! ऐसा आत्मा! गजब भाई! यह तो ५६४ भेद जीव के सीख गये। अमुक भेद। परन्तु वे भी सब विकार के। वह कहाँ मूल जीव है। समझ में आया? वे तो सब भेद हैं।

यहाँ तो प्रभु स्वयं। पर्याय दो प्रकार की—संसार और मुक्ति की। वह पर्याय भी व्यवहार आत्मा है। यह सत्य आत्मा, निश्चय आत्मा, भूतार्थ आत्मा नहीं। पण्डितजी! गजब ऐसा मार्ग, भाई! सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। इन्द्रों और गणधरों के बीच दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा आया और कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जान लिया, अनुभव किया, चारित्र हुआ, वे ऐसा कहते हैं कि भाई! मार्ग यह है। समझ में आया? ओहो..हो..! गजब श्लोक, भाई! लो, ऐ... रतिभाई! तुम बराबर आये और यह श्लोक बाकी रह गया। कल विचार था, कहा दो मिनिट रह गये थे। यह कहाँ अभी चलेगा? पाँच श्लोक तो चले थे।

मुमुक्षु : आज पाँचवाँ रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवाँ हुआ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आया न।

मुमुक्षु : विभाव असत् होने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। कहा न वह। पाँचवाँ फिर से लो, ऐसा कहते हैं। वह ३४, ३५ है और इसके ऊपर ३४ है। ये सब श्लोक ऐसे हैं। छहों श्लोक ऐसे हैं।

पहले श्लोक से देखो। पहला, ३०वाँ कलश।

सकल मोहरागद्वेषवाला जो कोई पुरुष,... यहाँ तो कहते हैं कि सकल मोह-राग-द्वेष की पर्याय, पर्याय में हो, तथापि **जो कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से, निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है,...** इतना कहते हैं। एक समय में सकल मोह-राग-द्वेष हो। पर्याय में हो, वस्तु में नहीं। गुरु की सेवा करने से अर्थात् गुरु कहते हैं कि तेरा द्रव्यस्वभाव सम्पूर्ण निर्विकल्प सहज समयसार को जानो। गुरु में ऐसा कहा। गुरु का उपदेश यह है। दूसरे प्रकार का उपदेश हो कि राग से (होगा), वह गुरु का उपदेश नहीं है।

देखो! **परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,...** ३०वाँ है, भाई! ३०वाँ कलश। निर्ग्रन्थ मुनि, राग में से निकलकर स्वभाव का भान हुआ, उनका उपदेश यह हुआ। उनका मुख्य उपदेश यह है कि निर्विकल्प, भगवान! तेरी चीज़ तो विकल्प के भेद से रहित निर्भेद है। पर्याय का भेद भी उसमें नहीं है और तू सहज समयसार है। स्वाभाविक आत्मा जो ध्रुवस्वरूप है, उसे जानो, ऐसा गुरु ने कहा था। उसे जाना। जानता है इसका अर्थ कि अनुभव किया। **समयसार को जानता है, वह पुरुष, परमश्रीरूपी सुन्दरी...** उसे मुक्तिरूपी पर्याय प्राप्त होती है। सिद्ध की पर्याय उसे प्राप्त होती है। समझ में आया? आहा..हा..! देखो तो सही! श्लोक लिखे हैं न! थोड़ा-थोड़ा ले लिया। ३१वाँ श्लोक, लालभाई कहे, थोड़ा-थोड़ा लो। ३१।

भावकर्म के निरोध से, द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग, भावकर्म है। उसकी अनुत्पत्ति होना। निरोध का अर्थ (कि) उसकी अनुत्पत्ति होना। इस कारण से द्रव्यकर्म की भी उत्पत्ति न होना। **द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है।** वर्तमान विकारी पर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई, तो कर्म भी नहीं आते, तो द्रव्यस्वभाव के आश्रय से विकारी पर्याय उत्पन्न नहीं हुई तो कर्म भी नहीं आते तो वस्तु के स्वभाव के आश्रय से मुक्ति होती है। किसी व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान और उनसे मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है क्योंकि भावकर्म के निरोध से... तो व्यवहाररत्नत्रय, शुभराग भावकर्म है, उसे रोकने से। निरोध का अर्थ रोकने से। रोकने का अर्थ तो उपदेश की शैली है न! जिसमें राग नहीं, ऐसा चैतन्य भगवान आत्मा, उसका अन्तर आश्रय करने से परमानन्द की दशारूप मुक्ति होती है तो भावकर्म और द्रव्यकर्म खिर जाते हैं। समझ में आया? गजब बात, भाई! ३२वाँ श्लोक।

जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है,... जिसने, आत्मा ज्ञायकभाव चिदानन्द शुद्ध ध्रुव, उसे ज्ञेय बनाकर जिसने ज्ञान किया नहीं, ऐसी चीज़ का जिसने ज्ञान किया नहीं, ऐसी वस्तु का जिसने ज्ञान किया नहीं, वह भ्रान्तिरूप प्राणी है। पूरी पर्याय में उसकी एकता है, ऐसा कहते हैं। **जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित...** है। अपना निजस्वभाव ध्रुवस्वरूप प्रभु के ज्ञानरहित है। वह द्रव्यस्वभाव के ज्ञानरहित है। पर्याय के भान में रमता है तो मिथ्याभ्रान्ति है।

वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,... अज्ञानी है न? वह अज्ञानी पुण्य-पाप के भाव का कर्ता होता है। ज्ञानी पुण्य-पाप का कर्ता है नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि अपनी वस्तुस्वभाव का भान होने से, उसमें विकार नहीं तो वह विकार का कर्ता नहीं है। जब तक विकार और स्वभाव के बीच एकता मानता था, जिसे एक मानता है, उसका कर्ता होता है। यह कहते है, देखो, **वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** अज्ञानी। क्यों? कि वह शुभ और दया, दान विकल्प, वह मेरी चीज़ है, जिसमें एकता मानी है, उसका वह कर्ता होता है। अज्ञानी करता होता है, ज्ञानी कर्ता नहीं होता, क्योंकि ज्ञानी ने स्वभाव में एकता मानी है। राग से अनेकता / भिन्नता कर दी है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! विकल्प जो होता है, उससे एकत्व तोड़ डाला है तो द्रव्यस्वभाव में एकता हुई है। वह पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है। समझ में आया? कल थे? रतिभाई कल नहीं थे। परसों थे। यह तो कल का थोड़ा फिर से (लेते हैं)। रविवार है न, इसलिए (लेते हैं)।

मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... आहा..हा..! कहते हैं, जो शुभ और अशुभ विकल्प रागभाव और शुभ-अशुभउपयोग है, उसमें अज्ञानी की अस्तित्व बुद्धि है। यहाँ अस्तित्व जो महाप्रभु विद्यमान है, उसके ज्ञान से रहित है। महाचैतन्य प्रभु की सत्ता के ज्ञान से रहित है, इसलिए वह शुभाशुभ परिणाम में रुका हुआ है। अज्ञानी उनका कर्ता होता है, इसलिए लेशमात्र भी मोक्ष की वांछा की उसे खबर नहीं है। **वांछना नहीं जानता,...** जानता नहीं। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत के विकल्प का कर्ता होता है, वह **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** आहा..! यह राग की क्रिया करते हैं, और इससे मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टि। **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** आहा..हा..! गजब काम, भाई! समझ में आया?

भगवान की भक्ति, पूजा, दया, व्रत और तप, यह सब शुभविकल्प हैं और विकल्प का करनेवाला; कर्तारहित ज्ञाता है, उसका मोक्षमार्ग स्वभाव से शुरु होता है, उसे बिल्कुल वांछता नहीं, जानता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते होगा। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार का कर्ता होता है, उसे लेशमात्र भी मोक्षमार्ग की इच्छा नहीं है। मोक्षमार्ग कैसे उत्पन्न होता है, उसे जानता नहीं है।

मुमुक्षु : परमसत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमसत्य है। यह तो त्रिकाल परमसत्य है। दुनिया, माने, न माने, उससे कहीं सत्य का असत्य हो जाता है ? आहा..! समझ में आया ?

३३वाँ श्लोक। **जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है,...** क्या कहते हैं ? जिसे शुभविकल्प में भी अच्छा लगता है, उसे कर्मसमूह के सुख में अच्छा लगता है कि यह ठीक है... ठीक है। वह आत्मा के आनन्दसमूह को आदरता नहीं है। **समस्त कर्मजनित सुखसमूह...** देखो! शुभभाव में सुख मानता है, ठीक मानता है, हित मानता है। उसे परिहरण करता है, उसे छोड़ता है। शुभभाव में भी सुख नहीं, हित नहीं, मददगार नहीं। समझ में आया ? किसमें ? आत्मा में सम्यग्दर्शन में यह शुभभाव किंचित् मददगार नहीं है। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : समयसार में हस्तावलंब कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का ज्ञान कराया है। फल संसार बताया है। हस्तावलंब कहा परन्तु फल संसार बताया है। आता है ? जेठाभाई! कहाँ आता है ?

मुमुक्षु : समयसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : ११वीं गाथा। आहा..हा..! उस हस्तावलंब का अर्थ ? राग की मन्दता, वहाँ ऐसा होता है, बस परन्तु उसका फल तो बन्धन, संसार है। आत्मा का धर्म उसके कारण फले / प्रगट हो, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। अगम्य बातें हैं, भाई! चिदानन्द भगवान निर्विकल्प सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें वह राग... आहा..हा..! वह तो सुखसमूह की कल्पना अज्ञानी की है। (उसे) छोड़ता है। इसका अर्थ ऐसा कि उससे कुछ प्राप्त होगा, शुभराग में ठीक है, सुख है, मदद मिलेगी, ऐसी दृष्टि छोड़ता है।

वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए,... कल जरा सूक्ष्म बात आ गयी है। जिसने विकल्प का भाव ठीक है, ऐसी दृष्टि छोड़ दी है, वह **निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न...** कौन ? अतिशय चैतन्यमय द्रव्य। अपना द्रव्य, निष्कर्म सुख, आनन्द समूहरूपी अमृत के सरोवर में ज्ञानमय चैतन्य मग्न है। अनादि से मग्न है। समझ में आया ? तुम कल थे। बसन्तीलालजी! कल सबेरे थे या नहीं ?

वह भव्य पुरुष,... बस, इस राग से ठीक है, ऐसा छोड़ता है। शुभभाव पुण्य वह ठीक है, ऐसी दृष्टि छोड़ता है, वह किसमें लीन होता है ? इस भाव को छोड़ता है तो कैसे

भाव की प्राप्ति होती है ? अनादि निष्कर्म, कर्मरहित चीज़, सुख समूह आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा के अमृत सरोवर में वह मग्न है। कौन ? ऐसी अतिशय चैतन्यमय वस्तु। आनन्द और ज्ञान दो लिये हैं। चैतन्यमय स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द में लीन है। एकरूप। वह वस्तु त्रिकाल एकरूप है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त, अतिशय चैतन्यमय मग्न है। ऐसा भगवान एकरूप, एकरूप है। पर्याय आदि तो दो रूप हो गयी।

अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है। लो। वह अजोड़ निजभाव को प्राप्त होता है। वह निजस्वभाव को प्राप्त होता है तो पर्याय में आनन्द की प्राप्ति होती है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! लोगों को ऐसा लगता है कि ऐसा कहीं धर्म होगा! वीतराग का धर्म ऐसा होगा ? वीतराग में तो कन्दमूल नहीं खाना, वनस्पति नहीं खाना, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करना, रात्रि को आहार नहीं करना, छह परबी खाना नहीं, ब्रह्मचर्य पालन करना, व्रत करना, अपवास करना, पूजा करना – ऐसा होता है। ऐई... पण्डितजी! वह तो राग की मन्दता की क्रिया क्या है, उसे बताते हैं। समझ में आया ? यह कहीं धर्म नहीं है। आहा..हा..!

धर्म तो अद्वितीय चैतन्य निजभाव जो अनादि-अनन्त, उसको प्राप्त होता है। आहा..हा..! यहाँ राग की सुखबुद्धि छोड़कर, सुख समुद्र में मग्न चैतन्यमय एक अद्वितीय आत्मा को प्राप्त होता है। समझ में आया ? एक ओर छोड़ता है तथा एक ओर प्राप्त होता है। एक ओर व्यय होता है तथा एक ओर उत्पन्न होता है। त्रिकाली में दृष्टि की तो निजभाव की प्राप्ति होती है। आत्मा, आत्मा है, वह भाव तो कहीं बाहर नहीं आता परन्तु निजभाव यह है, उसकी पर्याय में प्राप्ति (होती है, उसे) पर्याय में ज्ञायकभाव आ गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ग्यारहवीं गाथा में कहा नहीं ? ज्ञायकभाव तिरोभाव था, वह आविर्भाव हो गया। ज्ञायकभाव तिरोभाव था ? ज्ञायकभाव का जो भान नहीं था, वह भान हुआ तो ज्ञायकभाव का आर्विभाव है, ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, (ऐसा कहा)। इसी प्रकार यह निजभाव प्राप्त होता है। समझ में आया ? व्यवहार के विकल्प को छोड़कर... उपदेश की पद्धति में नास्ति से तो ऐसा आता है। छूटता कब है ? नित्यानन्द भगवान चैतन्यमय स्वरूप है, उसकी दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से, वह है उसकी सत्ता का स्वीकार अनुभव में हुआ तो व्यवहार का नाश हुआ। निश्चय के आश्रय से शान्ति की प्राप्ति हुई। जो प्राप्ति हुई, वह धर्म है। आहा..हा..! कहो, कान्तिभाई! ऐसा धर्म। बहुत महंगा धर्म, भाई! दुर्लभ धर्म यह तो

कहे। दुनिया में तो बाहर में जरा कर लिया—जाओ एक दया पालो, एक भक्ति करो, एक भगवान की यात्रा कर लो, जाओ हो गया धर्म।

मुमुक्षु : समझ पीछे सब सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐसा श्रीमद् का वाक्य है। बराबर।

ऐसे **अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है।** अजोड़ निजभाव ज्ञायक त्रिकाल, उसकी भेंट ज्ञानी को होती है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अब ३४वाँ श्लोक।

(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... हम तो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द हैं। उसमें तो संसार, विभाव है ही नहीं। समझ में आया? वहाँ संसारमार्ग नहीं। पश्चात् कहते हैं संसार, सिद्धि हमारे में नहीं है। यह बाद के श्लोक में डाला। चैतन्य भगवान अभेद एकरूप सदृश त्रिकाली वस्तु में—हमारे स्वभाव में, त्रिकाली स्वभाव में विभाव तो असत् है, झूठा है। उसकी हमें चिन्ता नहीं है। हमारे में है ही नहीं। उसे निकालने की या छोड़ने की चिन्ता क्या? ऐसा कहते हैं। हमारे में वह विभाव है ही नहीं, फिर उसे छोड़ने की चिन्ता हमें कहाँ है? हमारा स्वभाव है, उसे पकड़ लिया तो असत्भाव उत्पन्न होता नहीं, छूट जाता है। छोड़ने-फोड़ने का हमारे है नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी चिन्ता ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... उसका अर्थ? विभाव छोड़ूँ, व्यवहार त्यागूँ... परवस्तु त्यागूँ, वह तो अन्तर में है ही नहीं। यहाँ तो अभी पर का त्याग किया और धर्म हो गया... धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही! पर का तो त्याग ही है तेरे आत्मा में। (पर) कब घुस गया है? शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, ये कोई आत्मा में घुस गये हैं? आत्मा में पर्याय ही नहीं तो यह चीज़ कहाँ से आयी? ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! परन्तु लोगों को ऐसा लगता है कि यह सोनगढ़ की बात एकान्त है... एकान्त है, ऐसी पुकार करते हैं। उनकी बात सच्ची है। सम्यक् एकान्त है, सच्चा एकान्त है। आहा..हा..! ऐसा एकान्त हो, तब उसे पर्याय का ज्ञान होता है, यह बाद में १९ गाथा में लेंगे। ऐसा सम्यक् एकान्त का भान हो, उसे पर्याय का ज्ञान होता है कि पर्याय है, बस! समझ में आया?

अहो! **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,...** भगवान आत्मा

हृदयकमल अर्थात् अन्तर ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसमें सर्व कर्म से विमुक्त है। रागादि, विकल्पादि, कर्म से रहित वह तत्त्व, वह द्रव्यस्वभाव वस्तु है। **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** आहा..हा..! देखो, दिगम्बर मुनि हैं। सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव जंगल में बसते थे, वनवास में थे। समझ में आया? (वे कहते हैं), हम तो **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** ऐई.. जाधवजीभाई! लो, यह तुम्हारे पौत्र ने पूछा था न, तुम्हारे लड़के ने-तुम्हारे पौत्र ने पूछा था। इनके लड़के का लड़का दिलीप बारह वर्ष का है, बहुत होशियार है, बारह वर्ष का, हों! वह बारह वर्ष का। उसके पिताजी ने पूछा, अरे दिलीप! ....अभी तो कलकत्ता है न! दिलीप! महाराज कहते हैं कि जंगल में मुनि रहते हैं तो उन्हें कैसे रुचता होगा? गोठे कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? कैसे अच्छा लगता होगा? वह काठियावाड़ी भाषा बोले इनका पुत्र और उसका पुत्र। इनने पूछा था, अरे दिलीप! महाराज कहते हैं कि मुनि तो जंगल में बसते हैं। उन्हें कैसे अच्छा लगता होगा? अरे... पप्पा! ऐसा कहा, बारह वर्ष का लड़का है। अभी वहाँ कलकत्ता है। पप्पा! वे मुनि तो आनन्द में लहर करते हैं। दिलीप को कभी देखा है? कलकत्ता में। जयन्तीभाई का लड़का है। वे मुनि तो आनन्द की लहर करते हैं। पप्पा! तुम्हें कहा? सिद्ध भगवान अकेले कैसे रहते हैं? ऐसा कहा। ऐसे वापस तर्क दिया। बारह वर्ष का लड़का है। सिद्ध भगवान अकेले रहते हैं या नहीं? उन्हें दु:ख होगा? अकेले रहते हैं। अनन्त आनन्द में सिद्ध विराजते हैं। पप्पा! तुम्हारे कौलाहल चाहिए है, तुम्हें निवृत्ति नहीं चाहिए। ऐसा लड़का है। कौलाहल—ऐसा करना और ऐसा करना, ब्याज-बट्टे का धन्धा है न? गृहस्थ व्यक्ति है, कलकत्ता में हुण्डी और ब्याज के बटाव का धन्धा है, तो कहा कि तुम्हें झंझट चाहिए। घोंघाट समझते हो? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। झंझट / कोलाहल। पप्पा! तुम्हें कोलाहल चाहिए ऐसा चाहिए और वैसा चाहिए, तुम्हें निवृत्ति अच्छी नहीं लगती।

देखो! **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** हम तो आनन्द में हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! नग्न मुनि मात्र वस्त्र छोड़े हैं, इतना नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार हुआ। पंच महाव्रत के विकल्प और अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये। वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? मैं तो सर्व कर्म से मुक्त। **शुद्ध आत्मा का एक का...** भाषा देखो! **एक का...** साथ में दूसरा

विकल्प नहीं। आहा..हा..! यह मुनिपना है। आहा..हा..! लोगों ने अभी मुनिपना सुना ही नहीं है और हो गये मुनि। आहा..हा..!

कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा का एक का सतत...** निरन्तर हमारे आनन्द का अनुभव हमें है। अन्दर राग और विकल्प का मिश्रित भाव नहीं है, इसका नाम मुनिपना और मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! **क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है। न खलु न खलु।** आहा..हा..! अपना निजानन्द भगवान, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अन्तर का अनुभव करने से मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से मुक्ति-फुक्ति नहीं होती। आहा..हा..! लो, **नहीं है, नहीं है।** फिर छठे श्लोक में कहते हैं, संसारी और सिद्ध दोनों पर्याय हमारे में नहीं है। पहले तो कहा था कि विभाव हमारे में नहीं है। फिर कहते हैं कि संसार की विकारी पर्याय और मुक्ति की अनन्त आनन्द पर्याय, वह व्यवहार है, व्यवहार है। एक समय... एक समय... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आदि-अन्तरहित चीज़ के समक्ष एक समय की अवस्था व्यवहार है। उसे छोड़कर हम तो त्रिकाली आनन्दकन्द में रमते हैं। उसका नाम धर्म है। यह कहते हैं।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)